

समणसुत्तं में प्रतिपादित जीवन के शास्वत मूल्य

— डॉ. श्रीमती सरोज जैन, उदयपुर

जैन धर्म में प्रारम्भ से मुनि धर्म को प्रमुखता मिलती रही है। इस कारण उसे 'समणधम्म', तथा 'णिग्गंथ धम्म' भी कहा गया है। किन्तु मुनियों की साधना उनके भक्तजन गृहस्थों के नैतिक जीवन और धार्मिक जीवन पर भी आधारित है, अतः मुनि धर्म के साथ-साथ श्रावकों के नैतिक आचरणों पर भी जैन धर्म में विवेचन किया गया है। जैन धर्म में प्रतिपादित श्रावकाचार पर विचार करने के पूर्व जैन धर्म क्या है और 'श्रावक' क्या है, इस विषय पर भी जैनाचार्यों ने विस्तार से प्रकाश डाला है।¹

जिनशासन में श्रद्धा

वीतरागी, तपस्वी साधकों, तीर्थकरों के द्वारा उपदेशित धर्म आज 'जैनधर्म' के रूप में जाना जाता है। 'समणधम्म', 'णिग्गंथधम्म' तथा 'आर्हतधर्म' से 'जैनधर्म' के रूप में विभिन्न युगों में इसका विकास हुआ है। जैनधर्म में रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, और सम्यक्चरित्र की प्रमुखता है। सम्यक्चरित्र के अन्तर्गत ही मुनिधर्म और श्रावक धर्म की विवेचना होती है।² 'अहिंसा' और 'अपरिग्रह' व्रत की पालना मुनि और श्रावक दोनों के लिए प्रमुख है। दोनों के व्रत—पालन करने में स्तर का अन्तर है। अन्य व्रत एवं साधना अहिंसा और अपरिग्रह की दृढ़ता के लिए हैं। श्रावक का अर्थ है, जो श्रद्धापूर्वक जिन वचनों को सुने और उनके अनुसार अपना जीवन यापन करें। समणसुत्तं की गाथा संख्या 301 में कहा गया है कि सम्यक् दर्शन (श्रद्धा) को प्राप्त जो व्यक्ति प्रतिदिन मुनिजनों से आचार—विषयक (समाचारी) उपदेश सुनता है उसे श्रावक कहा गया है। अतः जिनशासन में श्रद्धा और श्रवण श्रावक के प्रमुख गुण हैं। वह सप्त व्यसनों का त्यागी होता है। पंच अणुव्रतों का पालक होता है। चार प्रकार के दान देना श्रावक का परम कर्त्व्य है। अतः श्रावक का जीवन एक आदर्श नागरिक का जीवन है। कहा भी है—

संपत्त दंसणाई, पदूदियहं जइजणा सुणेईय।

सामायारिं परमं जो, खलु तं सावगं बिंति।। — गाथा, 301

जैनधर्म के आधारभूत ग्रन्थ प्राकृत भाषा में उपलब्ध हैं, जिनके अब हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी आदि भाषाओं में भी अनुवाद प्राप्त हैं। जैन धर्म के प्राचीन प्राकृत ग्रन्थों की सारभूत बातों को विश्व में प्रचारित करने के लिए आज से 35 वर्ष पूर्व जैन धर्म का एक प्रतिनिधि

ग्रन्थ सभी मूर्धन्य विद्वानों और जैन सन्तों ने मिलकर तैयार किया था, जिसका नाम 'समणसुत्त' रखा गया।³ इसमें जैन समणों, आचार्यों द्वारा लिखे गए प्राचीन प्राकृत ग्रन्थों की मूल 756 प्राकृत गाथाओं का संग्रह है। अतः 'समणसुत्त' प्राचीन ग्रन्थ की तरह प्रामाणिक और जैन परम्परा में जैन धर्म के ज्ञान के लिए सर्वमान्य है। इसके अब अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हैं।⁴ यह ग्रन्थ प्रत्येक जैन श्रावक के घर में श्रद्धा के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

प्रत्येक जीवन का मूल्य

'समणसुत्त' के प्रारम्भ में पंच नमस्कारमन्त्र 'णमोकार' का वर्णन कर जिन शासन की मूलभूत शिक्षाओं का विवरण दिया गया है। ग्रन्थ में यह बताया गया है कि हमारे जीवन के आदर्श वीतराग परमात्मा हैं। उनके गुणों का स्मरण करने से व्यक्ति नैतिक और आध्यात्मिक जीवन में सफल हो सकता है। उसमें लोक-कल्याण की भावना जाग्रत होती है। वह अपने समान ही अन्य जीवों एवं मनुष्यों के जीवन को मूल्यवान समझने लगता है। जीवन का मूल्य समझना ही वैश्विक शान्ति की आधारशिला है। 'समणसुत्त' में यह शिक्षा दी गयी है कि जो तुम अपने लिए चाहते हो वही दूसरों के लिए भी चाहो तथा जो तुम अपने लिए ठीक नहीं समझते उसे दूसरों के लिए भी मत चाहो, यही जैनधर्म के तीर्थकरों के उपदेश का सार है। यथा—

जं इच्छसि अप्पणतो जं च ण इच्छसि अप्पणतो
तं इच्छ परस्स वि या एत्तियंग जिणसासणं ॥ 24 ॥

What you desire for yourself desire for others too; what you do not desire for yourself, do not at all desire for other too-this is the essence of Jaina Dharma.

सही दृष्टि, सही दिशा में

'समणसुत्त' की प्राकृत गाथाओं में जीवन के शास्वत मूल्य समाहित हैं। वे किसी धर्म, जाति, देश-काल में नहीं बँधे हुए हैं। आज के विश्व को यही समझ में नहीं आ रहा है कि जीवन में सार क्या है, और व्यर्थ क्या है? हम अज्ञान में असार वस्तु, व्यक्ति, विकास, लाभ आदि के पीछे पड़े रहते हैं। तुच्छ उपलब्धि के लिए अपनों को ही पीड़ित करते रहते हैं। 'समणसुत्त' ग्रन्थ हमें बताता है कि इंद्रियसुख थोड़े समय के लिए तुष्टि दे सकते हैं, हमेशा के लिए नहीं। हम अपने शरीर के इर्दगिर्द ही घूमते रहते हैं। जबकि इस बहिरात्मा के अलावा एक अन्तरात्मा भी है, एक परमात्मा भी है।

परमात्मा के दर्शन, अज्ञान, मोह के हटने पर ही हो सकते हैं। अतः हमारी आत्म-जागृति होना जरूरी है। यही जैन दर्शन का सम्यग्दर्शन है। दृष्टि को सही दिशा में बदलना ही विकास की सही दिशा है। यह बदलाव व्यक्ति में स्वयं आये तो यह उसकी स्वतन्त्रता और स्वाभिमान को बनाये रखता है, अन्यथा वह पराधीन ही बना रहता है, जो अधार्मिक और अविकसित होने की पहचान है। समणसुत्तं कहता है कि यही उचित है कि मैं स्वयं ही संयम और तप के द्वारा अपने पर विजय प्राप्त करूँ। बन्धन और वध के द्वारा दूसरों से मैं प्रताड़ित किया जाऊँ, यह ठीक नहीं है।⁵ यथा –

वरं में अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य।

माऽहं परेहि दम्मंतो, बंधणेहि वहेहि य।।28।।

It is better to control myself by self-restraint and austerity instead of being enslaved and subjugated by others – Uttaradhyanasutra, 1.16.

स्वाधीनता का मूलमंत्र

आज विश्व में पराधीनता के दुःख से सभी मुक्त होना चाहिते हैं, किन्तु स्वाधीनता कैसे प्राप्त हो, इसका सही उपाय खोजने में भूल हो जाती है। इसके लिए समणसुत्तं का यह संदेश एक वैश्विक मूल्य की तरह है कि स्वयं पर संयम करना सीखो। अच्छे स्वास्थ्य और सुख का यह मूलमंत्र है।

अहिंसा मूल्य की श्रेष्ठता

समणसुत्तं में श्रावकाचार के व्रतों का विस्तार से वर्णन है। उनमें अणुव्रतों में अहिंसा और अपरिग्रह आज विश्वशान्ति के लिए परिहार्य मूल्य बनकर उभरे हैं।⁶ समणसुत्तं में कहा गया है कि जैसे जगत् में मेरु पर्वत से ऊँचा कुछ नहीं है, वैसे ही अहिंसा के समान जगत् में श्रेष्ठ और व्यापक धर्म कोई ओर नहीं है। यथा –

तुगं न मंदराओ आगासाओ विसालयं नात्थि।

जह तह जयंमि जाणसु धम्ममहिंसा समं नत्थि।। 58।।

समणसुत्तं अहिंसा धर्म की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करने के साथ यह भी बताता है कि असावधान, आलसी व्यक्ति हिंसक होता है और अप्रमादी व्यक्ति अहिंसक होता है। अर्थात् क्रिया के साथ-साथ मन की भावना भी जीव-रक्षण की होनी चाहिए। जीवन में सद्गुणों का विकास तभी सम्भव है, जब हमारे क्रिया-कलापों में संयम हो। ज्ञानी होने का सार भी यही है कि वह ज्ञानी हिंसक न हो। तभी समता की पालना हो सकती है—

व्यक्तित्व विकास के मूल्य

संयमित जीवन जीने के लिए यह जरूरी बताया गया है कि मन में बुरे विचारों को जगह न दी जाय। जैनधर्म में ऐसे कुटिल विचारों कषाय कहा गया है। क्रोध मान, माया, लोभ ये चार प्रमुख कषाय हैं।⁷ इनसे व्यक्ति के सद्गुण नष्ट होते हैं। समणसुत्त में कहा गया है कि क्रोध प्रीति को नष्ट करता है, मान (घमंड) विनय को नष्ट करता है, माया (कपट) मैत्री को मिटा देती है और लोभ (आसक्ति) सभी सद्गुणों को नष्ट कर देता है। यथा —

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणय नासणो।

माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्व विणासणो।। 35।।

समणसुत्त ग्रन्थ विकास के इन दुश्मनों को जीतने के उपाय भी बताता है कि क्षमा से क्रोध का नाश करें, मृदुता (विनयशीलता) से मान (घमण्ड) को जीतें, सरलता से कपट व्यवहार (माया) को दूर करें और संतोषवृत्ति (अनासक्ति) से लोभ को जीता जा सकता है (गा. 136)। समणसुत्त में प्रतिपादित व्यक्तित्व विकास के ये मूल्य आज विश्व को शान्ति का संदेश दे सकते हैं।

जीवन के शास्वत मूल्य

समणसुत्त में विश्वजनीय मूल्यों की सुन्दर व्याख्या है। यह ग्रन्थ गीता, बाईबिल, कुरान, धम्मपद की तरह जैनधर्म का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का सभी भाषाओं में अनुवाद और प्रचार होना चाहिए। क्योंकि इस ग्रन्थ में तपस्वी साधकों के वे अनुभव हैं, जो निस्वार्थ भाव से जीवों के कल्याण के लिए उपदेशित हैं। ग्रन्थ में कहा गया है कि नैतिक आचरण के साथ व्यक्ति का अंतिम लक्ष्य जीवन का चरम विकास होना चाहिए। ग्रन्थ कहता है कि जैसे जल के संयोग होने से लवण (नमक) घुल जाता है, वैसे ही ध्यान करने से जो आत्म-साक्षात्कार की अग्नि पैदा होती है, उससे अशुभ, दुखदायी कर्म भी भस्म हो जाते हैं।⁸ ध्यानी साधक के चित्त में ईर्ष्या, निराशा, अफसोस आदि मानसिक तनाव नहीं रहते। आज का विश्व इन्हीं तनावों से मुक्ति चाहता है। अतः समणसुत्त में प्रतिपादित जीवन के शास्वत मूल्य केवल व्यक्ति के नैतिक आचरण को ही नहीं सुधारते हैं, अपितु वे एक सभ्यसमाज का निर्माण भी करते हैं। जैन धर्म के अनेक सिद्धान्त आज के विश्व के

मानसिक और भौगोलिक प्रदूषण को कम करने में भी सहायक हो सकते हैं।⁹ जैन मुनि एवं जैन श्रावक अपने सात्विक जीवन द्वारा विश्व को शान्ति और सद्भावना का सन्देश देते हैं।

आत्म विकास और लोक-कल्याण के मूल्य

समणसुत्त में कहा गया है कि श्रावक पांच अणुव्रतों के पालन के साथ सप्त व्यसनों का त्यागी भी होता है। इन व्रतों के पालन से सच्चे श्रावक का जीवन श्रमणाचार की ओर अग्रसित होता है। तीन गुणव्रतों और चार शिक्षाव्रतों का पालन करने को भी श्रावक को कहा गया है। ये सप्त शील व्रत भी कहे गये हैं। इनके पालन से श्रावक धीरे-धीरे सांसारिक जीवन से विरक्त होता जाता है। ये व्रत अहिंसा और अपरिग्रह की पूर्ण साधना में सहायक बनते हैं। श्रमणाचार की ओर आगे बढ़ने में श्रावक को ग्यारह प्रतिमाओं का भी पालन करना चाहिए। यह सब श्रावकाचार संक्षेप में समणसुत्त में वर्णित है। विस्तार के लिए जैन धर्म में इस विषय पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं।¹⁰ समणसुत्त में तो पाँच अणुव्रतों एवं साल शिक्षाव्रतों को पालन करने वाले श्रावक को आंशिक यति (देशयति) भी कहा गया है—

पंच य अणुव्वयाइं सत्त उ सिक्खा उ देसजइ धम्मो ।

सव्वेण व देसेण व तेण जुज्झो होई देसजई ॥ — गाथा 300

श्रावक के व्रतों के साथ उसकी धार्मिक क्रियाओं में सामायिक को प्रमुख स्थान प्राप्त है। सामायिक करने से श्रावक श्रमण के समकक्ष साधक की श्रेणी में गिना गया है।¹¹ यह उसके आत्म विकास में सहायक है और उसके द्वारा दिया गया दान लोक-कल्याण में सहयोगी है।

सन्दर्भ

1. जैन आचार : सिद्धान्त औश्र स्वरूप, देवेन्द्र मुनि शास्त्री, उदयपुर
2. जैन धर्म, पं. कैलाश चन्द्र शास्त्री, मथुरा, 1975
3. समणसुत्तं, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1975
4. समणसुत्तं, अंग्रेजी अनुवाद, श्री जस्टिस टी. के. तुकोल, वाराणसी, 1993
5. (क) रिलीजन एण्ड कलचर ऑफ जैन्स, जे. पी. जैन, दिल्ली, 1983
(ख) जैन धर्म की सांस्कृतिक विरासत, प्रेम सुमन जैन दिल्ली, 2005
(ग) जैन एथिक्स, – दयानन्द भार्गव, दिल्ली, 1972
6. जिनवाणी-अहिंसा विशेषांक, सम्यक्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर।
7. भगवती अराधना (शिवाय), सोलापुर, 2006
8. समणसुत्तं चयनिका-कमलचन्द्र सोगानी, जयपुर, 1996
9. जैन संस्कृति और पर्यावरण-संरक्षण, प्रेम सुमन जैन, उदयपुर, 2002
10. (क) वसुनंदिश्रावकाचार, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली
(ख) रत्नकरणडक श्रावकाचार, वीर सेवा मंदिर, दिल्ली
(ग) श्रावकाचार संग्रह (भाग 1-5) सोलापुर
11. समणसुत्तं, गाथा 326 एवं 327

-29 विद्या विहार कॉलोनी

उत्तरी सुन्दरवास

उदयपुर - 313001

समणसुत्तं में अंकित दार्शनिक प्रतीक एवं रूपक

प्रो. प्रेम सुमन जैन, उदयपुर

जैन धर्म एवं दर्शन की इन मूलभूत बातों के विवेचन के लिए जैन परम्परा में प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। आचारांगसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, दशवैकालिकसूत्र, सन्मत्तिसूत्र आदि प्राचीन प्राकृत ग्रन्थ जैन धर्म-दर्शन के अलग-अलग पक्षों का उद्घाटन करते हैं। समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, मूलाचार, तिलोयपण्णति, भगवती आराधना आदि प्राकृत ग्रन्थ जैन दर्शन की विवेचना करते हैं, किन्तु इन सभी की अपनी सीमाएँ भी हैं। जैन दर्शन के सभी पक्ष इन किसी एक ग्रन्थ में विवेचित नहीं हैं। अतः जैन धर्म एवं दर्शन के आधुनिक प्रतिनिधि मूर्धन्य सन्तों, विद्वानों एवं समाज के गणमान्य व्यक्तियों ने एक साथ मिलकर 1974 में प्राचीन जैन प्राकृत ग्रन्थों की महत्वपूर्ण गाथाओं का चयनकर एक **समणसुत्तं** नामक ग्रन्थ तैयार किया। उसकी 756 प्राकृत गाथाओं में जैन धर्म एवं दर्शन के सभी पक्षों का विवेचन उपलब्ध है। आज 35 वर्षों बाद इस समणसुत्तं ग्रन्थ की दार्शनिक विवेचना देश के शीर्षस्थ चिन्तक कर रहे हैं, इससे इस ग्रन्थ की लोकप्रियता बढ़ेगी और जैन दर्शन के कई आयाम उद्घाटित होंगे।

जैन धर्म एवं दर्शन को जन-सामान्य में प्रचारित करने के लिए तीर्थंकर महावीर ने तत्कालीन जनभाषा प्राकृत को माध्यम बनाया। जैन आचार्यों ने दर्शन के गूढ रहस्यों के उद्घाटन के लिए लोकभाषा के साथ जनप्रचलित कथाओं और दृष्टान्तों का प्रयोग भी अपने ग्रन्थों में किया है। प्राचीन जैन सिद्धन्त-ग्रन्थ कथा और काव्यतत्वों से ओत-प्रोत हैं। इसकी झलक हम 'समणसुत्तं' में भी देख सकते हैं। इसमें दार्शनिक पक्षों को सुन्दर प्रतीकों और उपमाओं के द्वारा समझाया गया है। पूरे ग्रन्थ में 20 दार्शनिक प्रतीक/रूपक और 35 उपमाएँ/दृष्टान्त प्रयुक्त हैं। उनमें से कतिपय यहाँ पर प्रस्तुत करने का प्रयत्न है।

समणसुत्तं में कुल 44 सूत्र हैं, जिनमें 756 गाथाएँ हैं। इन 44 सूत्रों में प्रतीकों और दृष्टान्तों के माध्यम से विषय को स्पष्ट किया गया है। मंगलसूत्र में कहा गया है कि अरिहन्त परमेष्ठी ने घातिया कर्मों को नष्ट कर दिया है, वे अनन्तज्ञानी हैं, अनुपम सुख के धारी हैं और भव्य जीवों के हृदयरूपी कमलों को विकसित करने वाले सूर्य की तरह हैं। (गा. 7)। इसी सूत्र में सिद्ध परमेष्ठी की वंदना करते हुए कहा गया है कि चांद से भी अधिक निर्मल, सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान एवं सागर से भी अधिक गंभीर सिद्ध भगवान मुझे मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करें—

चंदेहि णिम्मलयरा, आइच्चेहिं अहियं पयासंता ।
सायरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥

— गा. 16

इन रूपकों में आचार्य ऐसी वस्तुओं को चुनते हैं जो जन-सामान्य में बहुप्रचलित है। कमल, सूर्य, चन्द्रमा, सागर इनको कौन नहीं जानता? प्रकृति की ये अमूल्य धरोहर हैं। जो इनके उपकार को जानता है, वह इनसे तुलना रखने वाले अरिहन्त और सिद्धों के गुण को भी जान सकता है। शास्त्रों का ज्ञान, श्रुतज्ञान, कितना विशाल है, गंभीर है यह बताना कठिन है। अतः आचार्य ने रूपक बनाकर कह दिया — श्रुतज्ञान महोदधि — श्रुतज्ञान के सागर को प्रणाम — **पणमामि भत्तिजुत्तो सुदणाणमहोदहिं सिरसा** (गा. 19)।

जिन-वचन, इंद्रियों को जीतने वाले साधकों के वचन कितने उपकारी हैं, यह बात समझने में बहुत समय और साधनों की आवश्यकता हो सकती है। हजारों वर्षों से सन्तों के वचन हम सुनते आये हैं, उनकी उपयोगिता पर वाद-विवाद भी बहुत किये गये। अब भी कर रहे हैं। किन्तु जब समणसुत्तं जन-जीवन से एक रूपक/प्रतीक लेकर हमसे कहता है कि जिनेन्द्र के वचन उस अमृतमय औषधि की तरह हैं, जो सांसारिक अस्थायी इन्द्रिय सुख से हमें विरक्त करते हैं, बुढ़ापा, मृत्युरूपी व्याधि को दूर करने वाले हैं और सभी कर्म-जन्य दुखों का क्षय करने वाले हैं, तो बात हमारी समझ में आ जाती है कि बीमारी में हमें औषधि लेना है या नहीं—

जिणवयणमोसहमिणं, विसयसुह-विरेयणं अमिदभूयं ।

जर-मरण-वाहिहरणं, खयकरणं सव्वदुकरवाणं ॥ — गाथा 18

समणसुत्तं के तीसरे संघसूत्र में संघ (जैन समाज के साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाएँ) का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि गुणों का एक साथ मिलना संघ है — **संघो गुण-संघादो**। यह संघ व्यक्ति को उसी प्रकाश शान्ति और विश्वास प्रदान करता है, जैसे कोई थका-हारा व्यक्ति आने घर के वातानुकूलित कक्ष में पहुँच कर सुख अनुभव करता है। संघ माता-पिता के समान प्रेम देने वाला और सब तरफ से सुरक्षा देने वाला है। अतः संघ या समूह में रहने से डरने की जरूरत नहीं है। यथा—

आसासो वीसासो, सीयघर-समो य होइ मा भाहि ।

अम्मापिति-समाणो, संघो सरणं तु सव्वेसिं ॥ — गा. 27

हजारों वर्ष पूर्व प्रचलित समणसुत्तं की यह गाथा केवल दार्शनिक रूप से संघ की महिमा नहीं बताती, यह समाजशास्त्रीय महत्व की गाथा है। आज के एकल परिवार के लिए संयुक्त परिवार एवं माता-पिता का साथ कितनी सुरक्षा और सुख देने वाला है, इसकी ओर भी समणसुत्तं का यह कथन प्रेरित करता है। शीतघर (वातानुकूलित आवास) का रूपक

केवल ठंडक प्रदान करने की सूचना नहीं देता, अपितु इस और भी इंगित करता है कि जीवन में समस्याओं के, तनावों के, व्याधियों के कितने गरम झोंके व्यक्ति बहिर्मुखी होकर भोगता है। यदि वह अन्तर्मुखी होने की ओर मुड़े, थोड़ा-सा आत्म-गुणों को पहिचाने तो उसे शीतघर जैसा सुख मिल सकता है। वह तनावमुक्त हो सकता है। व्यक्ति से समिष्टी की ओर जाने, स्वार्थ से परार्थ की ओर जाने का संकेत देने वाली है यह गाथा।

समणसुत्त में आगे गाथा संख्या 30 एवं 31 में संघ को कमल के रूपक द्वारा समझाया गया है। कर्मरूपी धूलि से निर्लिप्त यह आत्मा उस कमल के पुष्प की तरह है जो कीचड़ और जल से ऊपर है। लेकिन वह संघ-कमल श्रुतरूपी नाल से अपनी परम्परा से जुड़ा हुआ है। पाँच व्रत उसकी पंखुड़ियाँ हैं, अन्य व्रतों के गुण कमल की केशर हैं, समतायुक्त मुनिजन संघ-कमल के खिले हुए सुगंधित पुष्प हैं, जिनकी सुगन्ध पाने के लिए श्रावक/भक्त जन खिंचे चले आते हैं भंवरों की तरह जिनेन्द्र देव रूपी सूर्य की रश्मियों से यह संघ-कमल विकसित होता रहता है। यह प्रकृति का मानवीय करण भारतीय साहित्य में अनूठा है।

जैनधर्म में आत्मा की निर्मलता के लिए क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि 10 धर्मों का विवेचन प्राप्त होता है। क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों को जीतने के लिए शौच धर्म का विधान किया गया है। समणसुत्त में दश धर्मों का वर्णन करते समय शौच धर्म के स्वरूप की व्याख्या एक रूपक द्वारा की गयी है। पानी से कीचड़ (मैल) को धोना जन-सामान्य में आम बात है। आचार्य कहते हैं कि लोभरूपी गाढ़ा मल-समूह जो आत्मा के साथ चिपक गया है, मन तीव्र लोभी बन गया है, उस तीव्र मल को समता और संतोष रूपी जल से जो साधक धोता है तथा भोजन में अति आसक्ति नहीं रखता उसके निर्मल शौच धर्म होता है। यथा –

सम-संतोष-जलेणं जो धोवदि तिव्व-लोहमल-पुंजं।

भोयण-गिद्धि-विहीणो, तस्स सउच्चं हवे विमलं।। –गा. 100

ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग के निरमा, ऐरियल, रिन आदि सभी डिटर्जेंट पाउडर समणसुत्त की इस गाथा से प्रेरणा लेकर बनाये गये हैं। लोभ (आसक्ति) के तीव्रमल को निकालने के लिए केवल समता से काम नहीं चल रहा था अतः आचार्य ने कहा उसमें संतोषरूपी जल भी जरूर है। इतना ही नहीं समता और संतोष तभी कारगर होंगे जब इनको धारण करने वाला साधक भोजन की आसक्ति से रहित होगा।

इससे यह भी ज्ञात हुआ कि लोभ की कालिमा कितनी तीव्र होती है और शौच धर्म केवली बाहरी शुद्धि नहीं है, अन्तरंग की शुद्धता उससे जुड़ी हुई है। लोभी मनुष्य का पेट

सोने—चांदी के हिमालय जैसे पर्वत भी नहीं भर सकते, क्योंकि उसकी इच्छाएँ आकाश के समान अन्तहीन हैं। अतः वस्तुओं से लोभ शान्त नहीं होता, वह इच्छाओं को कम करने से, जो प्राप्त है उसमें संतोष करने से ही शान्त होगा। संतोषधर्म ही संयम की आधारशिला है।

समणसुत्त के संयमसूत्र में पुनः प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। सन्तों के, आचार्यों के अनुभव किसी एक सम्प्रदाय या समूह के लिए नहीं होते। जन—सामान्य में क्या धारणाएँ/मान्यताएँ प्रचलित हैं, उनको उदाहरण में देकर अपनी बात सन्त करते हैं। समाज में यह मान्यता प्रचलित थी कि नरक में वतरणी नदी को पार करना बड़ा कठिन है, वह बहुत दुखदायी है। वहाँ पर कूट शाल्मलीवृक्ष (काटों वाला पेड़) है, जो बहुत दुख देता है। लेकिन कामधेनु (इच्छापूर्ति करने वाली गाय) दुःखों के रास्ते को पार करा देती है। तब कहीं स्वर्ग में नन्दनवन (सुख देने वाला बगीचा) प्राप्त होता है। अन्य सम्प्रदाय में प्रचलित इस धारणा का विरोध न करते हुए जैन आचार्य ने एक गाथा द्वारा इस प्रचलित धारणा का रूपान्तरण किया है। समणसुत्त कहता है कि वैतरणी नदी स्वयं आत्मा के द्वारा किये गये दुष्कर्म हैं। व्यक्ति उन्हीं का फल भोगता है, कोई नदी किसी को दुख नहीं देती। कूटशाल्मली वृक्ष यह आत्मा ही है, जो अशुभ कर्मों द्वारा अपने लिये काँटें उत्पन्न करता है। व्यक्ति की आत्मा ही कामधेनु (इच्छापूर्ति गाय) है, जो व्यक्ति को उसकी इच्छा के अनुसार स्थायी सुख दे सकती है, केवल सुखदाता पदार्थ नहीं हैं। व्यक्ति की आत्मा ही नन्दनवन है (सुख का निवास स्थान)। सुख कहीं बाहर से नहीं आता। आत्मा के गुणों को प्रगट करना ही सुखद अनुभव प्राप्त करना है। गाथा है—

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली।

अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नंदणं वणं।। — गा. 22

इस रूपक के उपरान्त जैन आचार्यों का यह कथन अच्छी तरह समझ में आ जाता है कि आत्मा जब सत्कर्म करता है तब वह अपना मित्र है और जब वह दुष्कर्मों में लिप्त होता है तब वह अपना शत्रु बन जाता है। अतः प्राप्त दुःखों का अथवा सुखों का जुम्मेवार स्वयं व्यक्ति का आत्मा ही है, अन्य कोई नहीं। —गा. 123

समणसुत्त की गाथाओं में ऐसे अनेक रूपक/प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं। ग्रन्थ का प्रमुख लक्ष्य संसार के दुखों को दूर करना और आत्मा के परमात्म—स्वरूप को प्रगट करना है। इसके लिए ज्ञान, शील, तप आदि की साधना जरूरी है। कहा गया है कि ज्ञानरूपी वायु से प्रेरित एवं शील (चरित्र) रूपी चिन्गारी से जलायी गयी तप रूपी अग्नि शीघ्र उस कर्मरूपी बीज को जला देती है जो संसार—भ्रमण का मूल कारण है, ठीक उसी प्रकार जैसे दावाग्नि (जंगल में फैली हुई आग) घास के ढेर को जला देती है। (— गा. 483)

ध्यान रूपी अग्नि से कर्मरूप ईंधन को जलाने का रूपक दार्शनिक—जगत् में बहुत प्रचलित है। (गा. 504)

जैन दर्शन में लोक—स्वरूप के लिए छह द्रव्यों एवं संसार व्यवस्था के लिए नौ पदार्थों का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। समणसुतं में कहा गया है कि यह शरीर (अजीव) एक नाव है, आत्मा (जीव) नाविक है और यह संसार एक समुद्र है, जिसको महर्षि सन्त लोग पार कर लेते हैं। यथा —

सरीरमाहु नाव ति, जीवो वुच्चइ नाविओ।

संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो।।

—गा. 567

समणसुतं में ऐसे रूपकों/प्रतीकों का विश्लेषण एक स्वतन्त्र अध्ययन का विषय हो सकता है। भारतीय दर्शन के साहित्य में प्रयुक्त रूपकों से इनकी तुलना की जा सकती है और इन रूपकों के माध्यम से तत्वज्ञान को समझकर ध्यान के द्वारा आत्म—कल्याण के पथ पर अग्रसर हुआ जा सकता है। समणसुतं में प्रयुक्त दृष्टान्तों, उपमाओं, उदाहरणों का अध्ययन बड़ा मनोरंजक है। इस पर कोई कार्य नहीं हुआ है। समणसुतं ग्रन्थ की व्याख्या लिखने में इन दृष्टान्तों का अच्छा उपयोग हो सकता है।

29, विद्या विहार कॉलोनी
उत्तरी सुन्दरवास
उदयपुर — 313001